Introduction

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
The M. S. University of Baroda

:: प्राक्कथन ::

भारतीय साहित्य, विशेषतः हिन्दी साहित्य, इतिहास, संस्कृति, पुरा-विद्या (Mythology) आदि विभिन्न विषयों की और अभिरूचि हाईस्कूल के दिनों से ही चली थी। हाईस्कूल के बाद महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बडौदा, के कला-संकाय में प्रवेश मिल गया। कालेज के दूसरे वर्ष में जब मुख्य विषय लेने की बात आयी तो मैंने हिन्दी भाषा एवं साहित्य का चयन किया। सन् 2002 में प्रवेश कक्षा प्राप्त करते हुए बी.ए. की उपाधि हासिल की। सपना फिर बड़ा हुआ। मन में एम.ए. करने की लालसा जगी। घरवालों ने पहले तो कुछ नना-नुच किया, किन्तु बाद में उन्होंने एम.ए. करने के लिए अपनी सम्मति दे दी। सन् 2004 में एम.ए. की उपाधि भी प्रथम कक्षा के साथ सम्प्राप्त की। मेरा पालन-पोषण-शिक्षा राजपूती (दरबारी) परंपरागत सामंतवादी संस्कारों के अनुकूल हुआ है। अतः जब आगे मैने पी-एच.डी. करने की बात कही तो घर-परिवार में काफ़ी विरोध हुआ, किन्तु पिताजी के मान जाने पर अंततः सब मान गये और इस संदर्भ में बाद में पर्याप्त सहयोग भी किया।

सदभाग्य से मुझे गुरु, गुरु शब्द का मैं साभिप्राय प्रयोग कर रही हूं, क्योंकि मेरे गुरु डॉ. पारुकान्त देसाई प्रायः कहा करते हैं कि विश्वविद्यालयों में अध्यापन करने वाले व्यक्ति की यात्रा शिक्षक से गुरु तक की होनी चाहिए। मेरे अध्ययन-काल में वह विभागाध्यक्ष थे और उनका मानना था कि "आर्ट्स" (कला) में आनेवाले छात्र या छात्रा को (साहित्य के) अन्य विषयों को भी पढ़ना चाहिए। पढ़ने के संदर्भ में वह कहते थे – 'Sky Is The Limit'। साहित्य के विद्यार्थी को यदि दूसरी विद्याशाखाओं का भी ज्ञान होता है तो शोध-अनुसंधान में नये आयाम जुड़ते हैं। मैं पहले निवेदित कर चुकी हूं कि साहित्य के अतिरिक्त इतिहास, समाजशास्त्र, पुरातत्व, संस्कृति, पुरा-विद्या आदि में मेरी अभिरूचि शुरु से ही थी। ऊपर से गुरु भी ऐसे मिले – "सोने में सुहागा" की कहावत चरितार्थ हो रही थी। बहरहाल सन् 2006 में बी.एड. करने के उपरान्त कला संकाय के हिन्दी विभाग में पुनः शोध-अनुसंधान हेतु आयी। देसाई साहब निवृत्त हो चुके थे। मेरे लिए

निर्देशक की समस्या थी तब तत्कालीन विभागाध्यक्ष डॉ. चतुर्वेदी साहब ने मुझे डॉ. कनुभाई निनामा का नाम सुझाया। विभाग में वे नये-नये निर्देशक नियुक्त हुए थे। मैंने अपनी इच्छा उनके सम्मुख रखी और उपन्यास विधा में किसी अनछुए पक्ष पर, जो इतिहास, पुराण आदि से सम्बन्ध रखता हो, शोध करने का विचार प्रकट किया।

उसके बाद दो-तीन महीनों तक कई बैठकें हुईं। उन्होंने मुझे शोध-प्रविधि तथा शोध-अनुसंधान विषयक स्रोत-ग्रन्थों को देख जाने के लिए कहा। उसके पश्चात कुछ प्रकाशित शोध-प्रबंधों को पढ़ने के लिए भी कहा, जिनमें डॉ. त्रिभुवनसिंह, डॉ. सिंहल, डॉ. मुदगल, डॉ. रोहिणी अग्रवाल, डॉ. पारूकान्त देसाई आदि के शोध-प्रबंध मैंने शोध-विधि तथा प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए देखा। हंसा मेहता लायब्रेरी के "शोध-प्रबंध-विभाग" में बैठकर कतिपय शोध-प्रबंध भी देखने का उपक्रम किया।

अंततः कई महीनों के उपरान्त डॉ. निनामा साहब इस निर्णय पर आये कि मुझे अपनी अभिरूचि को देखते हुए "हिन्दी के पौराणिक उपन्यासों" पर कार्य करना चाहिए। हिन्दी साहित्यकोश, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, (डॉ. त्रिभुवन सिंह), हिन्दी उपन्यास का इतिहास (डॉ. गोपालराय) आदि ग्रन्थों में उपन्यास के विभिन्न रूपबंधो-प्रकारों में ऐतिहासिक उपन्यास के साथ-साथ पौराणिक उपन्यास "शब्द का उल्लेख तो मिलता है, किन्तु उस पर कोई समूचा ग्रन्थ या शोध-प्रबंध नहीं मिलता। डॉ. हितेन्द्र यादव के संपादन में एक छोटी-सी पुस्तक – "पौराणिक उपन्यास : समीक्षात्मक अध्ययन" – में दो-तीन लेखक-लेखिकाओं ने हिन्दी के तीन-चार पौराणिक उपन्यासों का समीक्षात्मक विवेचन किया है। डॉ. विवेकीराय "नरेन्द्र कोहली : अप्रतिम कथा-यात्री" नामक ग्रन्थ में डॉ. कोहली के अन्य उपन्यासों के साथ-साथ डॉ. कोहली के तब तक प्रकाशित पौराणिक उपन्यासों की चर्चा की है। परंतु यह एक स्वतंत्र ग्रन्थ है, शोध-प्रबंध नहीं। अतः "हिन्दी के पौराणिक उपन्यासों" पर यदि मैं कार्य करती हूं तो वह इस दिशा में उठाया गया एक मौलिक

कदम होगा। अस्तु, विचार-विमर्श के उपरान्त दिनांक 1-2-2007 को हिन्दी विभाग के अंतर्गत डॉ. कनुभाई निनामा के निर्देशन में पी-एच.डी. उपाधि हेतु मेरा नामांकन हुआ। विषय था – "हिन्दी के पौराणिक उपन्यास : एक अध्ययन"।

उसके पश्चात् मेरा विधिवत् अध्ययन शुरू हुआ, हालांकि मैंने कई सारे पौराणिक एवं ऐतिहासिक उपन्यास पढ़ डाले थे। उन उपन्यासों को पढ़ते समय पौराणिक उपन्यास विषयक विभावना और भी स्पष्ट होती गयी और ऐतिहासिक उपन्यास और पौराणिक उपन्यास विषयक व्यावर्तक अभिलक्षण अधिकाधिक स्पष्ट होते गये। पी-एच.डी. के लिए जब गंभीरतापूर्वक डॉ. निनामा साहब के बताए गए मार्गदर्शक नियमों के तहत पढ़ना शुरु किया तब ज्ञात हुआ कि यों अपनी अभिरुचि के लिए पढ़ना एक वात है और शोध-अनुसंधान हेतु पढ़ना एक और ही बात है। शोध-कार्य में उपजीव्य (आधारभूत) साहित्य को पढ़ना ही नहीं होता, उसे बार-बार पढ़ना होता है। मूल कृति की केन्द्रीय चेतना तक पहुंचने के लिए कई आयामों से गुजरना पड़ता है। दो वर्ष की निरंतर पढ़ाई (शोध-परक पढ़ाई) के उपरान्त लेखन-प्रक्रिया पर आये। शोध-प्रबंध के समुचित आकलन हेतु मैंने उसे निम्नलिखित सात अध्यायों में विभक्त किया है –

(1)	प्रथम अध्याय :	विषय-प्रवेश
(2)	द्वितीय अध्याय :	पौराणिक उपन्यास की परिभाषा और विभावना
(3)	तृतीय अध्याय :	डॉ. नरेन्द्र कोहली के रामायण तथा महाभारत के कथावस्तु पर आधारित पौराणिक उपन्यास
(4)	चतुर्थ अध्याय :	अन्य पौराणिक उपन्यास
(5)	पंचम् अध्याय :	पौराणिक उपन्यासों में निरूपित मिथकों एवं चमत्कारपूर्ण घटनाओं की व्याख्या

(6) षष्ठ अध्याय : पौराणिक उपन्यासों में निरूपित परिवेश

(7) सप्तम् अध्याय : उपसंहार ।

प्रथम अध्याय "विषय-प्रवेश" में "प्रास्ताविक के अंतर्गत समूचे अध्याय के प्रारूप को रखने का हमारा उपक्रम रहा है। प्रस्तुत अध्याय में उपन्यास के व्यावर्तक लक्षणों की विस्तृत व सोदाहरण चर्चा हुई कि इस तरह यह विधा गध – साहित्य के अन्य रूपों से भिन्न है। उसके व्यावर्तक लक्षणों में उसका गद्य-विद्या में होना, उसकी यथार्थधर्मिता, परिवेश की यथार्थता पर विशेष आग्रह, सहज-स्वाभाविक चरित्र-चित्रण (चरित्र-सृष्टि की यथार्थता), यथार्थ भाषा-शैली प्रभृति अभिलक्षणों की चर्चा पौराणिक उपन्यासों के विशेष संदर्भ में की गई है। उसके पश्चात इसी अध्याय में हिन्दी की औपन्यासिक प्रवृत्तियों में पौराणिक उपन्यासों के स्थान को निर्धारित किया गया है। यहां प्रकारान्तर से हिन्दी उपन्यास की विकास-यात्रा के विभिन्न सोपानों को दर्शाते हुए उसमें पौराणिक उपन्यास का समावेश कहां से होता है, उसका प्रस्थान-बिन्दु कहां है उसे उदाहरण-सहित स्पष्ट किया गया है। पौराणिक उपन्यासों की प्रवृत्ति हमें प्रेमचन्दोत्तर काल में उपलब्ध होती है। प्रेमचन्दोत्तर काल में हमें आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत "वयं रक्षामः" उपन्यास उपलब्ध होता है जो रामायण की वस्तु पर आधारित है। यहां से पौराणिक उपन्यास जो शुरु होता है तो अद्यावधि (अर्थात् समकालीन उपन्यास तक) कमोबेश रूप में उसकी प्राप्ति होती रही है। परिमाण की दृष्टि से कम होते हुए भी प्रत्येक काल खंड में कुछ-न-कुछ उपन्यास प्राप्त होते रहे हैं। यहां यह भी स्पष्ट किया गया है कि पौराणिक उपन्यास पौराणिक कथावृत्तों पर आधारित होते हुए भी अपनी समय-चेतना से असंपृक्त नहीं रहे हैं। वस्तुतः उसमें वर्तमान या समसामयिक समस्याओं का आख्यान पौराणिक संदर्भों के माध्यम से होता है। उपन्यास चाहे ऐतिहासिक हो, चाहे पौराणिक उसे उपन्यास की शर्तों पर तो खरा उतरना ही होगा, अन्यथा वह पौराणिक उपन्यास नहीं गद्य में लिखा हुआ पौराणिक आख्यान हो जायेगा। अध्याय के अन्त में समग्रावलोकन

की प्रक्रिया प्रायः सभी अध्यायों में रही हैं। निष्कर्ष निकाले गये हैं यह प्रक्रिया प्रायः सभी अध्यायों में रही हैं। निष्कर्ष के उपरान्त संदर्भानुक्रम को रखा गया है।

द्वितीय अध्याय का आलोच्य-बिन्दु है – "पौराणिक उपन्यास की विभावना। हमारा आलोच्य विषय पौराणिक उपन्यासों से सम्बन्ध है, अतः पौराणिक उपन्यास की विभावना को स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक हो गया है। इधर देखने में आया है कि कई विद्वान इतिहास और पुराण के व्यावर्तक अंतर को न समझने के कारण भ्रान्तिवश पुराण को भी इतिहास के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। फलतः ऐसे लोग पौराणिक घटनाओं की गणना भी ऐतिहासिक घटनाओं के अंतर्गत करते हैं। इस भ्रान्ति के पुनरावर्तित होने के कारण वे विद्वान पौराणिक उपन्यासों को भी ऐतिहासिक उपन्यास बताने की गलती कर रहे हैं। डॉ. रामदरश मिश्र के औपन्यासिक आलोचना-ग्रन्थ "हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा" में डॉ. नरेन्द्र कोहली के "दीक्षा", "अवसर" आदि पौराणिक उपन्यासों का उल्लेख ऐतिहासिक उपन्यासों के संदर्भ में हुआ है।

ऐसा इसलिए भी होता है कि इतिहास और पुराण दोनों की प्रवृत्ति अतीतोन्मुखी है। किन्तु पुराणों में निरुपित अतीत अत्यन्त प्राचीन होता है, बल्कि प्राचीन ही होता है, जबकि दूसरी और इतिहास में निकटवर्ती अतीत भी हो सकता है। इतिहासकार रामचन्द्र गुहा द्वारा संपादित "Makers of Modern India" एक ऐसा ही उदाहरणीय इतिहास ग्रन्थ है जिसमें आधुनिक काल के लगभग 19 स्त्री-पुरुषों का विस्तृत जीवन-कवन है जिन्होंने भारत को आधुनिक बनाने में अपना विशिष्ट योगदान दिया है। अभिप्राय यह कि इतिहास निकट अतीत का भी हो सकता है। जबकि पुराण असंदिग्ध रूप से प्राचीन होता है, इतना प्राचीन कि उसका तिथ्यांकन भी अनिश्चित, अनिर्णित एवं विवादास्पद होता है। वस्तुतः इतिहास और पुराण में इस तरह की भ्रान्ति का कारण उभय की विभावनाओं (Concepts) के अंतर को न समझ पाना है। किन्तु इधर एक नया अनतगौन भी चल रहा है। कुछ लोग इरादतन पुराण को इतिहास प्रमाणित करने पर तुले हुए हैं

और फलतः व हर पौराणिक घटना को ऐतिहासिक घटना के रूप में देख रहे हैं और दिखा रहे हैं। यह तो एक ज्ञात सत्य है कि सोते को जगाना आसान है, लेकिन जगते को जगाना बड़ा ही मुश्किल है। बहरहाल प्रस्तुत अध्याय में हमने यह स्पष्ट करने की प्रामाणिक चेष्टा की है कि इतिहास और पुराण ये दो भिन्न विषय हैं और उनकी विभावनाएं (Concepts) भी तत्वतः भिन्न-भिन्न हैं। अतः प्रस्तुत अध्याय में इन दोनों विभावनाओं के अंतर को समझने के उपलक्ष्य में प्रथमतः इतिहास और पुराण के अंतर को व्याख्यायित करने का यत्न किया है। इतिहास और पुराण उभय के तात्विक अभिलक्षणों को विश्लेषित करने का प्रयत्न भी यहां हुआ है। तदुपरांत पौराणिक उपन्यास की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए पौराणिक उपन्यासों की प्रमुख आवश्यकताओं पर भी प्रकाश डाला गया है। पौराणिक उपन्यासों में अनेक मिथक कथाओं का संयोजन होता है। इस प्रकार के मिथक हमारे यहां ही नहीं, प्रत्युत सभी प्राचीन संस्कृतियों में पाए गए हैं। डॉ. उषापुरी विद्यावाचस्पति का "भारतीय मिथक कथा-कोश" भी उल्लेखनीय है। अतः प्रस्तुत अध्याय में मिथकों की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए देश या संस्कृति के निर्माण में पुराणों के योगदान को भी स्पष्टतया रेखांकित किया गया है।

डॉ. नरेन्द्र कोहली, पौराणिक उपन्यास-क्षेत्र में एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में उभरकर आये हैं। उनका प्रारंभिक लेखन तो व्यंग्यकार के रूप में है। "लोकप्रिय व्यंग्यकार श्रेणी" में उनकी व्यंग्य रचनाओं का प्रकाशन भी हुआ है। इसके अतिरिक्त उन्होंने कुछ सामाजिक समस्यामूलक उपन्यास भी दिए हैं, परंतु उन सबमें उनका व्यंग्यात्मक स्वर सर्वाधिक ऊपर है। आठवें दशक के प्रारंभ में उनके कालेज में कुछ हिंसक घटनाएं हुई थीं। विश्वविद्यालय परिसर में गुण्डागर्दी बढ़ रही थी। उनके कालेज में भी कुछ एसी घटनाएं हुई थीं जिनसे डॉ. कोहली का रचनाकर बहुत ही आहत था। बुद्धिजीवियों की निष्क्रियता उनको खल रही थी। अतः उनके भीतर बैठा हुआ विश्वामित्र सक्रिय हो गया था। उन्हीं दिनों बांग्ला-देश वाली घटना घटित हुई थी। युद्ध का प्रश्न आते ही हमारे सामने "महाभारत" का

युद्ध सजीव हो उठता है, किन्तु डॉ. कोहली को "बांग्लादेश वाला युद्ध" कई दृष्टियों से रामायण-चर्चित राम-रावण युद्ध जैसा प्रतीत होने लगता है और वे रामायण को लेकर एक उपन्यासमाला लिखने का विचार करते हैं। इस शृंखला का प्रथम उपन्यास है – दीक्षा। हिन्दी उपन्यास जगत में "दीक्षा" को अभूतपूर्व सफलता हासिल होती है। अतः लेखक रामायण की वस्तु को आधार बनाकर और उपन्यास भी लिखते हैं – "अवसर", "संघर्ष की ओर" और "युद्ध"। ये चारों उपन्यास पहले तो स्वतंत्र रूप से अलग-अलग प्रकाशित हुए थे, परंतु बाद में "अभ्युदय भाग-1" और "अभ्युदय भाग-2" में ये चारों उपन्यास संकलित हुए हैं।

रामायण पर आधारित पौराणिक उपन्यास-माला से डॉ. नरेन्द्र कोहली की एक विशिष्ट पहचान बनती है। इन उपन्यासों का हिन्दी-जगत में स्वागत होता है। उन्हें अश्रुतपूर्व सफलता मिलती है। फलतः व्याख्याता की नौकरी से संन्यास लेकर वे पूर्णतया पौराणिक उपन्यास-लेखन में ही दत्तचित्त हो जाते हैं। रामायण के उपरांत वे महाभारत का एक तज्ज्ञ की दृष्टि को सामने रखकर अध्ययन करते हैं, जिसकी फलश्रुति के रूप में महाभारत पर उनके आठ उपन्यास आते हैं – बंधन, अधिकार, कर्म, धर्म, अंतराल, प्रच्छन्न, प्रत्यक्ष और निर्बन्ध। इन आठ उपन्यासों को "महासमर भाग-1" से "महासमर भाग-8" के नाम से भी जाना जाता है। तृतीय अध्याय में डॉ. नरेन्द्र कोहली के इन पौराणिक उपन्यासों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यहां भी अध्याय के अंत में निष्कर्ष दिए गए हैं।

रामायण और महाभारत हमारी संस्कृति के उदघोषक महाकाव्य हैं। यदि कोई भारतीय संस्कृति, भारतीय समाज, उसकी परंपराओं, मान्यताओं और विश्वासों पर अध्ययन करना चाहता है, तो उसे इन दो महाग्रन्थों की शरण में तो जाना ही पड़ेगा। रामायण जहां आदर्शवादी है, महाभारत यथार्थवादी है। परंतु ये दोनों ग्रन्थ हमारे धर्म, न्याय, कर्मफल, दर्शन की सूक्ष्म व्याख्या करते हैं। गुजरात के ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कवि उमाशंकर जोशी प्रायः कहा

करते थे कि हम सभी साहित्यकार, भारत की तमाम भाषाओं के, अपनी-अपनी समझ के अनुसार भारतीय संस्कृति का ही आलेखन कर रहे हैं। यह कथन रामायण-महाभारत के संदर्भ में सटीक ठहराता है। कोई ऐसा भारतीय लेखक-कवि-चित्रकार-संगीतकार, शिल्पकार नहीं होगा जो कभी इन ग्रन्थों के रूबरू नहीं हुआ होगा। इनके अतिरिक्त श्रीमद् भागवत पुराण तथा अनेकानेक पुराण और ब्राह्मणग्रन्थ आदि हैं जिनके उपर्युक्त उपन्यासों के अलावा भी कई उपन्यास मिलते हैं जिनको हम पौराणिक उपन्यास की संज्ञा दे सकते हैं। चतुर्थ अध्याय में हमने इन उपन्यासों का विवेचन प्रस्तुत किया है जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं – अनामदास का पोथा (आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी), वयं रक्षामः (आचार्य चतुरसेन शास्त्री), अपने अपने राम (डॉ. भगवान सिंह), प्रथम पुरुष, पुरुषोत्तम, पवनपुत्र (डॉ. भगवतीशरण मिश्र), अभिज्ञान (डॉ. नरेन्द्र कोहली), सुतो वा सुतपुत्रो वा (डॉ. बच्चनसिंह), संभवामि (सन्हैयालाल ओझा), एकदा नैमिषारण्ये (अमृतलाल नागर)। इन उपन्यासों के अतिरिक्त मनु शर्मा के भी कतिपय पौराणिक उपन्यासों की चर्चा यहां की गई है। ध्यान रहे इन उपन्यासों का विश्लेषण द्वितीय अध्याय में निर्दिष्ट पौराणिक उपन्यास की विभावना और परिभाषा के अनुसार ही हुआ है। पौराणिक उपन्यास भी तब बनता है जब वह उपन्यास की यथार्थधर्मिता के निकष पर खरा उतरता है।

पंचम् अध्याय का विषय वस्तु है: पौराणिक उपन्यासों में निरूपित मिथकों एवं चमत्कारपूर्ण घटनाओं की व्याख्या। यह पहले कहा जा चुका है कि ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक घटनाओं का निरूपण होता है; ठीक वैसे ही पौराणिक उपन्यासों में मिथक-कथाओं तथा चमत्कार-पूर्ण घटनाओं की आधुनिक दृष्टि से वैज्ञानिक एवं तार्किक व्याख्या प्रस्तुत की जाती है। यही तत्व पौराणिक उपन्यास को पौराणिक उपन्यास बनाता है, अन्यथा वह गद्य में लिखा हुआ पौराणिक आख्यान मात्र रह जाता है। मिथक-कथा एवं चमत्कारपूर्ण घटना उभय में से एक-एक उदाहरण यहां प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे अध्याय में निरूपित विषयवस्तु किस प्रकार का है

उसकी स्पष्टता हो जायेगी। पौराणिक रामकथा में अहल्या के उद्धार की कथा आती है। इन्द्र द्वारा धोखे से बलात्कृत होने पर गौतम मुनि अहल्या को श्राप देते हैं जिससे वह पत्थर की शीला में परिवर्तित हो जाती है, बाद में अनुनय-विनय करने पर उस श्राप में एक मुक्ति-मार्ग की व्यवस्था होती है कि जब श्रीराम और लक्ष्मण वहां आयेंगे तो श्रीराम की चरणरज के स्पर्श से अहल्या पुनः जीवित हो उठेगी। बरसों बाद जब श्रीराम एवं लक्ष्मण ऋषि विश्वामित्र के साथ उस घटना-स्थल पर पहुंचते हैं तब श्रीराम की चरणरज के स्पर्श से अहल्या शीला में से पुनः मनुष्य-योनी में आ जाती है। अब इसी मिथक-कथा को डॉ. कोहली (दीक्षा उपन्यास) तथा डॉ. भगवान-सिंह दोनों ने अधिक वैज्ञानिक एवं तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया है। इन उपन्यासों में निरूपित किया गया है कि इन्द्र द्वारा बलात्कृत और गौतम द्वारा तिरस्कृत होने पर अहल्या संज्ञाशून्य हो जाती है। अपने होश-कोश खो बैठती है अर्थात् शीलावत् हो जाती है और अपराध-बोध से पीड़ित रहती है जो अपराध उसने किया ही नहीं है। अतः बरसों बाद जब श्रीराम लक्ष्मण सहित वहां पधारते हैं तब दोनों की मानवतापूर्ण-संवेदनापूर्ण बातों से अहल्या पुनः सामान्य-अवस्था में लौट आती है।

अब एक उदाहरण चमत्कारपूर्ण घटनाओं से प्रस्तुत है। रामकथा में दर्शाया गया है कि हनुमान उड़कर लंका पहुंचते हैं। अब किसी व्यक्ति का उड़ता इस वैज्ञानिक-युग में किसीको चमत्कारपूर्ण लग सकता है। डॉ. नरेन्द्र कोहली ने अपने रामायण-शृंखला के चतुर्थ उपन्यास "युद्ध" के प्रथम खण्ड में इस घटना को इस रूप में लिया है – सीतान्वेषण के लिए अलग-अलग दिशाओं में सुग्रीव-सेना की कुछ टुकड़ियां निकल पड़ती हैं। उनमें दक्षिण की ओर जो टुकड़ी गयी थी उसका नायक अंगद था और नल, नील, हनुमान आदि भी उसमें सम्मिलित थे। वे कई-कई दिनों तक दक्षिण के कन्याकुमारी स्थित समुद्रतट पर विचरण करते हैं। अतः उनको वहां के स्थानिक लोगों, मछुआरों एवं नाविकों से ज्ञात होता है कि लंका और भारत के बीच के समुद्र में एक स्तिया-मार्ग है जो अपेक्षाकृत छोटा है, अर्थात् वहां

इन दो भूखण्डों के बीच कम से कम अंतर है और जहां समुद्र अपेक्षाकृत उथला है। कहीं-कहीं तो खड़े रहकर थोडा विश्राम भी किया जा सकता है। हनुमान एक अच्छे तैराक थे, अतः इस स्तिया-मार्ग से समुद्र-संतरण द्वारा वह लंका पहुंचते है और सीता से भेंट करने के उपरान्त लंका में तबाही मचाते हुए पुनः उसी मार्ग से लौट भी आते हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय में आलोच्य उपन्यासों में जहां-जहां इस प्रकार की मिथक कथाएं हैं और जहां-जहां अतार्किक प्रकार की चमत्कारपूर्ण घटनाएं हैं उनका निरसन वैज्ञानिक, आधुनिक एवं तार्किक ढंग से उन सबका विश्लेषणपरक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

षष्ट अध्याय में आलोच्य पौराणिक उपन्यासों के परिवेश पर यथेष्ट प्रकाश डालने की भरसक चेष्टा की गई है। परिवेश अर्थात् देशकाल। देश अर्थात् स्थान और काल अर्थात् समय। यहां उन पौराणिक स्थानों के भौगोलिक एवं सामाजिक परिवेश को स्पष्ट किया गया है। वह समाज, उसमें प्रचलित सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, नैतिक मान्यताएं; उनके नीति-नियम और जीवन-मूल्य, उस समय प्रचलित सामाजिक रीति-रिवाज और प्रथाएं इन सबका सम्यक् मूल्यांकन करने की चेष्टा यहां की गई है।

सप्तम् अध्याय "उपसंहार" का है। कई शोधार्थी इसे अलग अध्याय न मानकर सीधे "उपसंहार" ही लिख देते हैं। किन्तु मेरे निर्देशक डॉ. निनामा साहब के मतानुसार "उपसंहार" एक अलग अध्याय ही होता है। हालांकि वह संक्षिप्त होता है, "गौपुच्छवत्" होता है, परंतु अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। उसके बिना कोई भी शोध-प्रबंध, शोध-प्रबंध नहीं कहलाता। इसमें मैंने अपने शोध-प्रबंध की उपादेयता बताते हुए, सम्पूर्ण शोध-प्रबंध का सार-संक्षेप और निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। अध्याय के अंत में बहुत ही संक्षेप में इस क्षेत्र में भवितव्य संभावनाओं को संकेतित किया है।

शोध-प्रबंध के अंत में छः परिशिष्ट के अंतर्गत अकारादिक्रम से "ग्रन्थानुक्रमणिका" को प्रस्तुत किया है। उसमें उपजीव्य ग्रन्थों की

सूची, संदर्भ-ग्रन्थ सूची (संस्कृत), संदर्भ-ग्रन्थ सूची (हिन्दी), संदर्भ ग्रन्थ सूची (अंग्रेजी), कोश-ग्रन्थ एवं शब्दकोशों की सूची तथा पत्र-पत्रिकाओं की सूची को क्रमशः रखा है।

अन्ततः यह शोध-प्रबंध विद्वानों तथा विदुषियों के सम्मुख है। अपनी सीमाओं और मर्यादाओं से मैं भलीभांति परिचित हूं, अतः उनके सम्मुख पहले ही क्षमाप्रार्थी हूं। "वादे वादे जायते तत्वबोधाः" के न्याय से मेरा यह शोध-कार्य इस क्षेत्र में कार्य करने वालों को यदि थोड़ा भी काम में आया तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूंगी।

मैं परम आस्थावान हूं। ईश्वर के असीम उपकार एवं आशीर्वाद के बिना ऐसा महती कार्य संभव नहीं है। अतः सर्वप्रथम मैं ईश्वर के प्रति श्रद्धावनत हूं। ईश्वर के उपरान्त माता-पिता का स्थान है। उनके आशीर्वाद के बिना मेरे लिए यह कार्य कर पाना मुश्किल होता, अतः उनके चरणों में अपनी श्रद्धा निवेदित करती हूं।

जिन विद्वानों व विदुषियों के ग्रन्थों, लेखों, निबन्धों, प्रपत्रों आदि से मैं लाभान्वित हुई हूं उन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मेरा परम धर्म है।

हमारी संस्कृति एवं परंपरा में गुरु का स्थान सर्वोपरि है। महात्मा कबीर ने तो गुरु का स्थान "गोविन्द" से भी ऊपर है ऐसा साफ कह दिया है। सुभाषित में भी गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहा गया है। हमारी संस्कृति में इन तीन देवताओं का महत्व अपरिहार्य है, अतः ऐसे "त्रिदेवतावत्" मेरे गुरु, मेरे निर्देशक डॉ. कनुभाई निनामा के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मेरा परम कर्तव्य है। उनके आशीर्वाद के बिना यह गुरु-कार्य असंभव था।

अन्य गुरुओं में प्रो. पारूकान्त देसाई, प्रो. मदनगोपाल गुप्त, प्रो. शिवकुमार मिश्र, प्रो. नवनीत चौहान, प्रो. दयाशंकर त्रिपाठी आदि गुजरात के गुरुवर्यों से मैं समय-समय पर मार्गदर्शन लेती रही हूं। अतः उन सबके प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करती हूं। गुरुऋण को चुकाना तो संभव नहीं है, अतः मैं भगवान से प्रार्थना करती हूं कि इन गुरुओं की कृपा मुझ पर बनी रहे।

हिन्दी विभाग की प्राध्यापकों में मेरे नामांकन के समय के विभागाध्यक्ष प्रो. विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी, वर्तमान विभागाध्यक्षा डॉ. शैलजा भारद्वाज, वरिष्ठ प्राध्यापकों में डॉ. ओ. पी. यादव, डॉ. दक्षा मिस्त्री, डॉ. कल्पना गवली, डॉ. शन्नो पाण्डेय, डॉ. एन. एस. परमार, डॉ. मोहम्मद अज़हर ढेरीवाला प्रभृति विद्वानों एवं विदुषियों से साथ-सहयोग व परामर्श प्राप्त होते रहे हैं, अतः उन सबके प्रति मैं हृदय से श्रद्धावनत हूं।

मेरे घर-परिवार के लोगों में माता-पिता के उपरान्त मेरे भाई श्री हरेन्द्रसिंहजी, मेरे सास-ससुर आदि को भी मैं इस समय विस्मृत नहीं कर सकती। मुझे उनका स्नेह, सहयोग एवं आशीर्वाद मिलता रहा है।

मेरे पति श्री राजीवसिंहजी ने मुझे सदैव प्रोत्साहन दिया है। उनके साथ-सहयोग एवं प्रोत्साहन के बिना यह शोध-कार्य असंभव था, क्योंकि नामांकन के दो वर्ष बाद हमारा विवाह, हुआ और मुझे उनके साथ फ्रान्स जाना पड़ा। वहां विदेश में उन्होंने जो मुझे स्नेह, साथ, धैर्य दिया उसके फलस्वरूप ही मैं इस मकाम तक पहुंच सकी हूं। अतः उनके प्रति मैं अपनी श्रद्धा-भक्ति निवेदित करती हूं। हमारे वैवाहिक जीवन के प्रेम का प्रतीक शैलादित्य (मेरा पुत्र) भी धन्यवाद का हकदार है क्योंकि बहुत से अवसरों पर शान्त रहकर उसने प्रकारान्तर से मुझे सहायता की है। इस अवसर पर मैं अपना ढेर सारा प्यार उस पर ऊंडेलती हूं। मेरी प्रिय सखी सुश्री रूपा झाला की स्मृति भी मेरे मानसपट पर लहरा रही है। इस अवसर मैं रसिकभाई दवे का भी आभार व्यक्त करती हूं जिन्होंने मुझे हमेशा पढ़ाई में प्रोत्साहन दिया।

अन्त में उन तमाम लोगों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस कार्य में मुझे सहायता की है।

अन्ततः बँगला कवि सुकान्त भट्टाचार्य की कविता की निम्नलिखित पंक्तियों के साथ अपने शब्दों को विराम देती हूं –

"आया है नया शिशु
उसके लिए छोड़ देनी होगी जगह
पुरानी दुनिया में
बेकार और भरे हुए मलबे के ढेर पर से
हमें चले जाना होगा
चला जाऊंगा...
लेकिन आज जब तक प्राण है इस देह में
जीजान से हटाऊंगा पृथ्वी के सारे जंजाल
संसार को इस शिशु के रहने योग्य बनाकर जाऊंगा मैं
नवजात के लिए यह मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है !"

दिनांक : 21 फरवरी, 2011

विनीत,

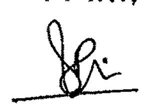

(प्रीति रणवीसिंह परमार)